संगीतोपयोगी सूल तत्त्व

वैज्ञानिक दृष्टि से संगीत ध्वनि- आन्दोलनों का परिणाम हैं। दो वस्तुओं की पारस्परिक टकराहट अथवा रगड़ वायु को आन्दोलित करती है, जो वातावरण में कम्पन्न उत्पन्न करती हुई हमारे प्रकृतिप्रदत्त कर्णयंत्रों को स्पंदित करती है- जिससे हमारी चेतना को ध्वनि का अनुभव होता हैं। यदि नाद से भरपूर सम्पूर्ण विश्व में उत्पन्न आन्दोलनों की हमारे कर्णयंत्र ग्रहण न करते, तो हमें ध्वनि का आभास नही होता। नाद-ध्वनि के दो प्रकार है-

१. अनियमित ध्वनि- आन्दोलनों का संगीतानुपयोगी-कम्पन,

२. नियमित ध्वनि- आन्दोलनों-कम्पन, यही नाद संगीतोपयोगी होगा। इस प्रकार नाद की नियमित गति या लय संगीत का मुख्य तत्व है। गति केवल संगीत ही नहीं अपितु समस्त जीवन का प्रमुख अवलम्बन है। समस्त प्रकृति गतिमान है और चेतना गति का प्रतीक हैं। चतना शून्य वस्तु कल्पनातीत है। जो वस्तु हमें स्थल रूप से जड़ अथवा स्थिर प्रतीत होती है, वह भी वैज्ञानिकों की दृष्टि से गतिमान है। वैज्ञानिकों पर्वतों तथा पत्थर के टुकड़ों में भी कम्पन तथा छड़कन का अनुभव करते हैं। कम्पन न केवल हृदय में, वस्तुतः शरीर के प्रत्येक कण में होता हैं। मृत्यु के उपरान्त भी यह गति बन्द नहीं होती, मात्र ऊपरी धड़कन रूक जाती हैं, इसीलिए शव में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, जो गति का प्रतीक हैं और इ स प्रकार चेतना का मूल धार गति अपने शाश्वत् नियमों के विधान में बँधी हैं।

नियमित गति ही लय है जो प्रबल-अबल भावना की जननी है। गति का यह दो रूप अनजाने ही प्रकट होकर हमारे कानों की स्वाभाविक पूर्ति करती है। घड़ी की टिक-टिक, रेल इंजन की छक-छक, रेलपटरियों का खट्-खट्, घोड़े की टाप, वायुयान की ध्वि, इन सभी में लगातार सुनते रहने पर एक ध्वनि प्रबल और एक ध्वनि अबल स्वाभाविक रूप से ग्रहण होती है। इस प्रकार के गति-खण्ड़ों का अनवरत चक्र हमारे जावन में सैकड़ों रूपों में विद्यमान दिखाई पड़ता है। भारतीय संगीत में इन ध्वनि खण्ड़ों के प्रबल-अबल रूपों से छोटे बड़े स्वर-समूह निर्मित होते हैं जो हमारे भावों को उद्घाटित करने में सहायक होते हैं। इन लय-खण्ड़ों के समूहों का विस्तार ही आगे चलकर भारतीय संगीत में ताल के रूप में प्रस्फुटित हुआ। इस प्रकार सृष्टि का समस्त आन्तर-ब्राह्त व्यापार गति के शाश्वत नियमों से बँधा हैं।

संगीत का दूसरा मूल तत्व स्वर हैं। 'स्वतः रञ्जयति इति स्वरः' यही इसकी यथार्थ व्याख्या है। कोई संगीत रसिक श्रोता है इसका अलौकिक दिव्य आनन्द प्राप्त कर सकता है। स्वरों का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि कर्ण-कुहरों में प्रवेश कर अन्तश्चेतना को स्वाभाविक रूप से अलौकिक आनन्द प्रदान करता है और रसिक श्रोता घण्टों बाह्य व्यापार भूलकर समाधिस्थ सा हो जाता है। वृक्षों में पुरानी पत्तियों का सूखना और नई कोपलों का प्रस्फुटत होना, पहाड़ों पर हिमपात होना और ग्रीष्म में जल के रूप में बहना, समुद्र की भाप का मेघरूप धारण कर पृथ्वी पर बरसना, धरती को सिंचित करना, पुनः नदी रूप में समुद्र में विलीन हो जाना आदि सभी प्रकृति में स्वरव्यापार के साधन प्रतीत होते हैं। उपर्युक्त वर्णनों में सभी में उतार-चढ़ाव का स्पष्ट अनुभव होता है। उसी प्रकार स्वरों में भी आरोहण-अवरोहण द्वारा यह क्रम-विशेष सदैव विद्यमान रहकर विशेष आनन्द और नवीनता का सेतु बनता है। भारतीय दार्शनिकों ने स्थूलोपासना को यथार्थ आनन्ददायिनी इसीलिए स्वीकार नहीं किया है, भले ही स्थूल-शाश्वत आनन्द की प्राप्ति के माध्यम बन जाये। इ सीलिए आकृत-नाद का प्रयोग हमारे योगियों, भक्तों, दार्शनिकों ने परमानन्द की प्राप्ति के लिए किया। दूसरी ओर जानसामान्य ने इसे व्यक्तिगत मनोरंजन का साधन बनाया। भारत के वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सभी परम्पराओं में अनेकों मतभेदों के बावजूद सभी ने संगीत का महत्त्व निर्विवाद रूप से माना है। यह भारतीय संगीत की अध्यात्म-निष्ठा का सुपरिणाम है। इस प्रकार एक निष्ठावान, संगीतज्ञ अपनी संगीत-साधना से स्वर और लय, इन दो मूल संगीत तत्वों के माध्यम से प्रकृतिजन्य आनन्द को विकीर्ण कर विश्व को भाव-विभोर कर देता है। यह भारतीय संगीत की चरम पराकाष्ठ है।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा

काशी/वाराणसी की संगीत परम्परा

भारतीय मनीषियों के संगीत को हृदयंगम भावों को उद्घाटित करने का सबल साधन माना है। प्राणिमात्र के रोदन, चीत्कार, हास्य इत्यादि क्रियाओं से जनित ध्वनियों से उसके मन में स्थित शोक, भय, रोष, उल्लास आदि का आभास हो जाता है, जो नाद के उतार-चढ़ाव या आरोहावरोहण का सशक्त स्वरूप है। वैदिक स्वर-उदात्त, अनुदात्र, स्वरित, कम्पित, दीप्त आदि, स्वरों के इसी उतार चढ़ाव के द्योतक हैं। सम्भाषण और गान दोनों में भावाभिव्यक्ति के लिए स्वरों में उच्चत्व और नीचत्व का होना परमावश्यक है, किन्तु एक निश्चित अवधान ग्रहण करने पर यह संगीतोपयोगी बन जाता है। तात्पर्य यह कि, ध्वनि का जो उतार-चढ़ाव सामान्य बोलचाल में भावों को व्यक्त करने में सहायक होता हैं। वही अवधान होने पर संगीत के स्वरों का स्थान लेता है। इ सी अवधान से संगीतोपयोगी सप्त स्वर क्रमशः षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों का जन्म हुआ।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.